The International Journal of Advanced Research In Multidisciplinary Sciences
(IJARMS)
Volume 3 Issue 1, 2020

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के असामान्य चरित्रों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

डॉ0 कौशलेन्द्र सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
पटेल श्री टीकाराम पी0जी0 कॉलेज,
साईं बगदाद मल्लवॉ, हरदोई (उ0प्र0)

आधुनिक परिवेश में व्याप्त मानवीय कुण्ठा, संत्रास के संदर्भ में आज के साहित्य में प्रायः सवाल उठाए जाते हैं। हिन्दी–कहानी भी इससे अछूती नहीं है। नारी और पुरुष दोनों ही इस वृत्ति के शिकार हुए हैं। यद्यपि दोनों की समस्याएं और समाधान एकदम एक से नहीं कहे जा सकते, फिर भी वे एक–दूसरे से एकदम असम्बद्ध भी नहीं कहे जा सकते।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जिस व्यक्ति विशेष का चित्रण हिन्दी–कहानी में मिलता है वह प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र एवं अज्ञेय के व्यक्ति विश्लेषण से हटकर नयी लीक पर मिलता है। आज कहानी में युगीन संत्रास को अनेक स्तरों पर स्वर मिला है, सामाजिक कुसंगतियों, अस्तित्ववादी संत्रास, समायोजन का संत्रास, रुग्णता का संत्रास आदि संत्रासों के कारण व्यक्ति असामान्यों की तरह व्यवहार करने लगता है। शारीरिक एवं मानसिक संत्रास व्यक्तियों में निराशा भर देते हैं।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार प्रचलित तैतीस में से एक संचारी, आकस्मिक भय से चित्तक्षोभ को 'त्रास' कहते है। ''भरतमुनि के अनुसार वज्रपात, उल्कापात, मेघ–गर्जन, भयानक वस्तु अथवा पशु के दर्शन से यह मनोवेग होता है। संक्षिप्त कम्पन, रोमांच, गद्‌गद् वाणी आदि अनुभवों में इसकी अभिव्यक्ति होती है।'' नाट्यदर्पण के अनुसार विद्युत्पात, भयानक प्राणियों एवं शव आदि के दर्शन से जो आकस्मिक उद्वेगकारी मनक्षोभ होता है, उसे ही 'संत्रास' कहते है। त्रास संचारी एवं भय स्थायी है। एक आकस्मिक, तो दूसरा पूर्वापार के विचार से सम्बद्ध होता है। कवि देव ने त्रास और भय की यों व्याख्या की है– 'घोर स्रवन दरसन सुमृति पुलक भव गात। क्षोभ जो होई चित्त में त्रास कहत कवि तात।' किसी रूप–शब्द रूप–अथवा स्मृति के गोचर होने से तत्क्षण कँपा देने वाला मनोवेग 'त्रास' है। भय में आलम्बन की निश्चित भावना होती है तथा

उसका लक्ष्य भी निश्चित होता है जब कि त्रास में विषय की स्पष्ट भावना नहीं और न ही उसका कोई लक्ष्य होता है। मैक्डूगल के अनुसार :–

"Terror, the most intense degree of this (fear) emotion"1

कीर्कगाद ने 'दी कानसेप्ट ऑफ ट्रेड' में दुश्चिंता के रूप में 'संत्रास' का विशेष विवेचन किया। उनके अनुसार 'जब कोई व्यक्ति किसी बाहरी शक्ति से इतना भयभीत हो जाता है कि उसे अपने नाश की संभावना महसूस हो यह स्थिति दुश्चिंता है।'2 यह दुश्चिंता भय से भिन्न है, भय का कोई कारण होता है। वह अस्पष्ट और आने वाले संकट के आभास पर आधारित होता है। दुश्चिंता में मनुष्य की व्यक्तिपरकता और स्वतन्त्रता डूब जाती है। हैडेगर के अनुसार ''सत्य से अभिव्यक्त वस्तु की ओर यह दौड़ मनुष्य में संत्रास उत्पन्न करती है। वह अपने को सत्य और संभावना से अलग मानता है।''3 समूह और वस्तु से टूटने की आशंका उसमें संत्रास उत्पन्न करती है तो दूसरी ओर सत्य से च्युत होने की अनुभूति भी संत्रास का कारण है। संत्रास का मुख्य अर्थ 'वह भय है जो किसी एक स्थान पर पकड़ में न आ सके। किसी ऐसी वस्तु से भी सम्बद्ध न हो सके जहाँ भय की आशंका हो। भय मुख्यतः जगत में होने के भाव का पर्याय है और त्रास हमें संसार से काटकर एकान्त में जाने को विवश करता है।''4

त्रास 'भय' के निकटतर है। यह आन्तरिक जगत का भय ही है। दोनों ही आगत दुःख से सम्बन्धित है। भय में जहाँ दुःख से पलायन की वृत्ति काम करती है, वहाँ त्रास में दुःख अन्तर को सालता ही रहता है। त्रास आकस्मिक और शंकालु भी है। सामान्य व्यक्ति का त्रास अधिक बढ़ जाने की स्थिति उसे चिन्ता युक्त कर देती है साथ ही मनोविदलता आदि रोग भी घर कर सकते हैं।

हमारी समझ में अधिक डरने की स्थिति में त्रास का मनोविज्ञान काम करता है। व्यक्ति के किसी दुःख से अत्यान्तिक रूप से डर जाने पर उसकी दुःखद स्मृतियाँ वर्तमान और अनामत से सम्बद्ध होकर मन को अनजानी, आशंका से युक्त कर देती है। उसमें आक्रोश, तनाव, घुमड़न तथा असन्तोष सभी हो सकता है। व्यक्ति का अहमृ क्षीण होने पर त्रास वेग से पनपता है। अमृतराय कहते हैं– 'संत्रास एकान्त भय की स्थिति है, सुन्न हो जाने की स्थिति है। दिशाहारा होकर प्राणभय से किसी कोने में छिपकर बैठे रहने की स्थिति है, निपट अकेले की स्थिति है। अर्थात् ऐसा अकेलापन जहाँ भीड़ में होने पर भी व्यक्ति अकेला है।'5 त्रास की स्थिति व्यक्ति जीवन की तरह समाज में भी हो सकती है। चन्दन नेगी के अनुसार 'किसी समाज या काल में

विकल्पों को प्राप्त कर सकने की स्वतन्त्रता की इति संत्रास को जन्म देने में समर्थ होती है और उसी इति का आधिक्य संत्रास की पकड़ को मजबूत बनाने में सहायक होने लगता है।''6

संत्रास के कई रूप हैं– महानगरीय संत्रास, बौद्धिकता का संत्रास, अतीत का संत्रास, रुग्णता जन्य संत्रास, मनस्तापी संत्रास, अप्राकृतिक मृत्यु का संत्रास, उच्चवर्गीय संत्रास तथा अनिच्छित जीवन का संत्रास।

पानू खोलिया की कहानी 'अन्ना' में 'संत्रास' के साथ–साथ अपनी नियति की क्रूर मार झेलते हुए पात्रों का चरित्र बहुत ही मार्मिक ढंग से उभारे गए हैं। माँ–बाप अन्ना की बीमारी से संत्रस्त होकर असामान्य हो गए है और कसाई की तरह बच्चों से व्यवहार करते हैं।

''दौरे पड़ते थे, पहले से बढ़कर पड़ते थे और घर की ताकत को झंझोड़ डालते थे। दूध, राशन, चीनी, सब्जी पर डाक्टर, दवा, फल लुटेरे की तरह झपट्टा मारते। 'दौरे अपना सूद वसूल कर काबुली पठान की तरह अगली मर्तवा तक के लिए लौट जाते। परिवार हलकान हो गया होता। पीछे से फिर सब्जी रुक जाती, ... मालिक–मकान लोगों से मुँह चुराना पड़ता।''7 कमरतोड़ खर्चे थे। उनका कोई हिसाब नहीं था। अन्ना के लिए जब फल आते तो दूसरे बच्चे भी मचल जाते, तब उन पर मार पड़ती। माँ–बाप का कसाईपन सारी परेशानियों का इलाज था।

जीवन में ऊँचा उठने की आकांक्षा किसी बाह्य आघात से बिखर जाती है, तब मोहभंग की स्थिति उत्पन्न होती है। आर्थिक दौड़ में पीछे रह जाना व्यक्ति की स्थिति को दयनीय बनाता है। व्यक्ति दिवास्वप्नी बन कर अपनी आकांक्षाएँ पूर्ण करता है। किसी व्यवधान में सपनों का भी बिखर जाने सी उसकी दयनीयता और गहरा जाती है। आज के व्यक्ति का पीड़ा का सूत्र कोई भावनात्मक नहीं है। कहीं वह कार्यालयी व्यवस्था के संत्रास से पीड़ित है तो कहीं अपने पराभव के भय से।

आज की जिन्दगी भी अजीब है। दो वक्त की रोटी के लिए इतनी मारा–मारी है। पेट न होता तो चिन्ताएँ न होतीं। क्या सारी आपाधापी पेट के लिए ही है। सारा चिन्तन, सोच, दर्शन, युद्ध, क्रान्ति, छीना–झपटी महज पेट के लिए है? भूख–पेट की, तन की, मन की, इच्छापूर्ति की है। भूख ने आदमी को जिन्दा रख है। भूख ने ही शोषण, जुल्म और नरसंहार को जन्म दिया। पूरी मानव–जाति भूख की वशीभूत होकर दूसरों से लड़ती रहीं। 'समय कम है' का कथा–नायक उस युग का अध्यापक है। सुविधाओं, साधनों और उपभोग को बटोरने की प्रतिस्पर्धा वाले युग का यहाँ जीवन व्यापार और व्यवहार के लिए पैसा चाहिए। इसलिए पैसे की भूख उसके लिए जीवन

की भूख है। अतिरिक्त आमदनी का उसके पास एक ही जरिया है' ट्यूशन। वह जानता है कि महत्वाकांक्षाओं के बिन्दु फैलकर यदि आकाश न बनें तो मास्टर की तनखा में उसका गुजारा ही हो सकता है। परन्तु जमाने की धारा के विरुद्ध अकेले चलना उसके लिए संभव नहीं था।

कथा–नायक मदन मोहन ने अपने अनुभव और पढ़ाने के ढंग का उपयोग ट्यूशन में करना चाहा। उसने एक ऐसे स्थान पर कमरा लिया, जहाँ आसानी से कोई आ नहीं सकता। बच्चों को भी समझा दिया था कि वे एक–एक करकें आएँ। ताकि किसी को शक न हो। परन्तु पता नहीं एक दिन ऐसा लगा जैसे कोई उसका पीछा कर रहा हो। ''खून जमा देने वाली सर्दी में भी मन मोहन का शरीर तप रहा था। रास्ते में वह गाड़ी से टकराते टकराते बच गया। मौत का सामना होते ही, उसने अपनी घबराहट को दबाया और निगह ऐसी चौकस करली कि कोई भाँप न सका। खतरे को देखते हुए वह रास्ता बदल बदल कर चलता रहा। टेलीफोन–एक्सचेंज के पिछवाड़े तक आते–आते 'पिंडलियों में मीलों लम्बी चढ़ाई चढ़ आने ऐंठन होने लगी थी। स्कूल से यहाँ तक, मुश्किल से आधा किलोमीटर की दूरी होगी। इतने में ही साँस चढ़ गई थीं।''8 चारों तरफ छत से परले मकान में निकलकर पीछे की गयी में पहुँचने पर भी उसकी साँस धौंकनी की तरह चल रही थी। ''सुरक्षित बच निकलने के बाद भी उसकी घबराहट कम नहीं हुई। सिर से पाँव तक जो कँपकपी छूट गई थी, उसके असर में कई बार सूत्र त्याग करने के बाद भी ब्लैडर भरा–भरा लग रहा था।''9 भागते हुए भी मनमोहन को लगता था उसके पीठ पर एक पंजा गढ़ता हुआ महसूस हो रहा था। ऐसा लग रहा था कि वह पंजा गले के फनदे की तरह अभी जकड़ने वाला है। कमरे से दूर निकल आने पर भी पंजे की रेंगन अभी भी पीठ पर बनी हुई थी। उसे आशंकाऐं तेजी से दबोचने लगी थी। उसे बार–बार यह डर लग रहा था कि कमरे में उन्हें कहीं बच्चों की कॉपी न मिले। सुई की नोंक के बराबर भी उन्हें सबूत मिला तो वे कैसा व्यवहार सकते हैं। ''वह खुद, कमरे की तरफ जाने का साहस नहीं कर पा रहा था। वहाँ के बारे में सोचने भर से ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। कुछ इस तरह का भय था कि वहाँ जाते ही दबोच लिया जाएगा।''10

हम देखते हैं कि आज संत्रास मनुष्य का काम्य नहीं, इष्ट नहीं फिर भी मनुष्य सहता है। शायद मनुष्य की अदम्य जिजीविषा इसका मूल है।

आज की भागदौड़ की दुनिया में व्यक्ति को हर वक्त असुरक्षा का संत्रास सताता है। विशेषकर नारी अपनी सुरक्षा के लिए सदैव भयभीत रहती है। कामकाजी नारी का संत्रास रेखा जी ने अपनी कहानी 'हाथ' में बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है, बस में यात्रा करने वाली नारी को

अनगिनत स्पर्शो, छींटाकशी एवं परेशानियों से गुजरना पड़ता है। कहानी की नायिका इन स्थितियों से गुजरते–गुजरते इतनी संत्रस्त हो जाती है कि उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ने लगता है।

मनोविज्ञान में गंध का बड़ा महत्व है। गंध के साथ मन का असोसिएशन होता है। हर प्रकार की गंध, अलग–अलग व्यक्ति और अलग–अलग स्थितियों का हमें पता देती है। जैसे उसे ''सहसा वह स्पर्श हाथों से छिटक गया। पीठ के नंगे हिस्से में एक खुरदरी रगड़ है कि लगातार उसका धीरज खुरच रही है। पीठ पर खनखजूरे जैसा कोई कीड़ा चल रहा है ..... उसके महीन–महीन पाँव पहले चमड़ी, फिर माँस फिर हड्डियाँ तक कुरेदते चले जाएँगे।''11 वह क्रोध में आकर पलटकर उस कलाई को पकड़ती है। तब वह एकदम सुन्न हो गयी। हाथ कहाँ था। सिर्फ हथेली थी। उँगलियों की जगह कुछ गंठीले उठाव। अदरक की गाठों जैसे। क्षत–विक्षत। सरयू ने जाना उस ठूँठ के लिए किसी जीवित शरीर को छूना किसी अतृप्त लिप्सा पाना बहुत बड़ा जोखिम था। सरयू पर इस स्पर्श का ऐसा प्रभाव हुआ कि ''एक मितली जैसी उठी। मुँह में मुट्ठी भर राख घुल गयी। नंगी पीठपर साड़ी का आँचल लपेटती हुई वह उस सीट से उठी।''12

दूसरी सीट पर बैठने पर भी उसे खनखजूरे के गरदन पर चलने का भ्रम हुआ। वह हिली तो वह कमर पर आ गिरा। अपने हाथ साड़ी में छुपाते हुए उसने देखा– ''आँखें वही रह गयी। एक और ठूँठ। हथौड़ें जैसी वेडौल मुट्ठी। नाक की जगह दो अँधरे छेद। विगलित चेहरा और देखते हुए घाव। तो इसी आदमी का ठूँठ उसकी नरम चमड़ी में अपनी चमड़ी तलाश रहा था।''13

जब बस रुकी तो किन्हीं अदृश्य हाथों ने उसे दरवाजे से बाहर फेंक दिया। सनिल जब तक उसका साड़ी में छुपा हाथ लपककर नहीं खींचता, तब तक वह उसी हैल्युजन की अवस्था में थीं मन की गुत्थियों को सुलझाना इतना आसान नहीं है। भीड़ में नारी की देह कें साथ अच्छे–अच्छे लोगे ऐसी ही गन्दी हरकतें करते हैं।

वास्तव में संत्रास का मूल भी अज्ञात भय है जिसके कारण सामान्य व्यक्ति भी मनोविदलता रोग का शिकार होकर असामान्य हो जाता है।